मेरा कमरा

यशोदा

जब मैं रात को अपनी ज़िन्दगी के एक दिन को घटाकर इस बिस्तर पर लेटती हूँ, तो मुझे ऐसा लगता है कि इस बिस्तर से ज़्यादा अपना मेरा और कोई नहीं है। दिन में तो मेरे पास कई चीज़ें होती हैं करने के लिए। बहुत से लोग होते हैं, जिनसे रिश्ते बनाए रखने के लिए उन्हें ज़्यादा न सही, लेकिन थोड़ा तो समय देना ही पड़ता है। क्योंकि मेरे हिसाब से अगर रिश्तों को समय न दिया जाए तो अपनाइयत के जज़्बे कमज़ोर पड़ने लगते हैं। लेकिन जब मैं अपने बिस्तर में लेटती हूँ तो मेरे पास और कुछ नहीं होता करने के लिए। मैं होती हूँ, मेरा बिस्तर, मेरी याद्दाश्त से जुड़ी कुछ यादें होती हैं। यादों से जुड़ी सोच होती है, सोच से जुड़े कुछ सवाल होते हैं, जिनके कभी तो मैं जवाब ढूँढ लेती हूँ, लेकिन कभी उन्हीं में उलझकर रह जाती हूँ। तब मुझे लगता है कि हर सवाल का जवाब तलाशा जाए, ये तो ज़रूरी नहीं। क्योंकि जब हम अपने या किसी और के सवाल का जवाब तलाशते हैं, तो उन जवाबों से जुड़े कई और सवाल हमें अपनी तरफ़ मुँह करे खड़े हुए दिखाई देते हैं। लेकिन चाहे जो भी हो, ये मेरा बिस्तर मुझे दस घण्टे तक अपने अन्दर समेटे रखता है। या यूँ कहा जाए, कि मैं दस घण्टे तक इस बिस्तर में सिमटी रहती हूँ। और मेरा प्यारा–सा तकिया, जिसमें मेरे कई मोती छुपे हैं, जो मेरी किसी गाढ़ी सोच की वजह से मेरी आँखों से उबल पड़ते हैं, और तकिये में जा मिलते हैं। किसी और को मेरे मोतियों का ज़ायका पता हो या न पता हो, लेकिन ये तकिया मेरे मोतियों के ज़ायके को अच्छी तरह पहचानता है।

जब मैं ख़ामोश, और अपने वजूद को सुकून से अपने बिस्तर पर छोड़े हुए लेटी होती हूँ, तो चारों तरफ़ की आवाज़ें मेरे कानों में ऐसे घुलती हैं जैसे पानी में कंकर। ऐसा लगता है जैसे मेरे कानों से लेकर मेरे दिमाग़ तक पानी भरा हुआ है और एक–एक करके ये कंकर (यानी ये सारी आवाज़ें) मेरे कानों से होते हुए मेरे दिमाग़ में फ़िट होती चले जा रहे हैं। जब मैं इन आवाज़ों के भंवर में अपना ध्यान लगाती हूँ तो कभी तो मैं अपने आप को कहीं दूर खड़ा पाती हूँ, या फिर कभी आस–पास के माहौल में ही सिमटकर रह जाती हूँ। कभी तेज़ी से गाड़ी के हॉर्न की आवाज़ आती है तो सारा ध्यान सड़क पर चल रही गाड़ियों की तरफ़ दौड़ पड़ता है। लेकिन माँ के खर्राटे मुझे अपनी तरफ़ खींच लेते हैं, क्योंकि मेरी माँ मेरे साथ ही सोती है।

जब बराबर वाले घर से गानों की आवाज़ आती है, तो मेरा मन मस्ती से झूम उठता है। लेकिन पिछली गली से आती हुई लड़ाइयों की आवाज़ मेरी मस्ती में मिट्टी डाल जाती है। इन सब में सबसे धीमी, गली से आती हुई किसी के बातें करने की आवाज़ मुझे ये सुनने पर मजबूर कर देती है कि कहीं ये बातें इम्पॉर्टेंट तो नहीं। लेकिन जब बिल्ली ज़ोर से हमारी छत पर कूदती है और हमारी कच्ची छत पर धमाका होता है, तो दिमाग़ की सोच चारों तरफ़ से हट कर घर में आ सिमटती है। कभी तो ये आवाज़ें रोमांचक लगती हैं, पर कभी–कभी इन आवाज़ों को सुनते–सुनते लगता है कि जैसे मैं पागल होने की कगार पर खड़ी हूँ। पर इस समय आवाज़ें बहुत कम होती जा रही हैं, और हवा बहुत ज़्यादा है।

आमतौर पर फ़रवरी के मौसम में ज़्यादा ठंड नहीं होती। पर पता नहीं इस साल क्या हुआ है जो ठंड जाने का नाम ही नहीं ले रही। आस–पास सुबह से ही बारिश की हल्की–हल्की बूंदें पड़ रही थीं। अब हवा भी चल रही है। जब हवा तेज़ी से चलती हुई तिरपाल और पत्तों को हिलाती है और हवा से हिलते समय इनमें जो आवाज़ पैदा होती है, वो मुझे बहुत अच्छी लगती है। क्योंकि ये आवाज़ कम सुनने को मिलती है। बाक़ी आवाज़ें तो रोज़ ही होती हैं। लेकिन ये आवाज़ अपने साथ ठंड, बदलते मौसम और कुछ बीते पलों का अहसास करा जाती है। मुझे लगता है कि ये आवाज़ हवा के कंपन से पैदा होती है, इसलिए हमारे मन में भी कंपन का सा काम कर जाती है। लेकिन ये रोज़ की आवाज़ें तो ऐसी लगती हैं जैसे ख़ून के साथ–साथ हमारे जिस्म में दौड़ रही हैं, जिनका कोई अलग अहसास नहीं होता। हाँ, कभी–कभी तेज़ आवाज़ से एक डर ज़रूर पैदा हो जाता है, लेकिन थोड़े समय के लिए।

कितनी आवाज़ें हैं मेरे मन में और मेरे बाहर। लेकिन फिर भी मेरे घर में सन्नाटा है। वो इसलिए क्योंकि सब सो रहे हैं। लेकिन हम तीन जाग रहे हैं – एक मैं, दूसरा मेरा बिस्तर, तीसरी मेरे दिमाग़ की सोच। इस गाढ़े सोफ़ते में मुझे एक चीज़ साफ़ सुनाई दे रही है, और वो है मेरी घड़ी की टिक–टिक करती धड़कन।

इन दीवारों की सफ़ेदी काफ़ी चमक रही है, जो दिन में काफ़ी सोई–सोई लगती है, क्योंकि इस समय बल्ब बहुत तेज़ जल रहा है, जो कि तेज़ पावर आने का असर है। दिन में तो मैं अपने बल्ब को आँखों से डराती हूँ। लेकिन इस समय तो मैं अपने बल्ब

से आँखें भी नहीं मिला पा रही हूँ, क्योंकि ये बहुत ज़ोरों से मुस्कुरा रहा है।

बल्ब के थोड़े नीचे शेल्फ़ पर हमारा टीवी रखा हुआ है, जिसमें बहुत सारी परछाइयाँ नज़र आ रही हैं और ऐसी लग रही हैं जैसे टीवी के बंद होने के बावजूद भी उसमें एक नई दुनिया बसी हुई है, जिस में न आवाज़ों का फ़र्क़ है, न बातों का, और न ही सोच का।

हमारी दीवारों की झिर्रियों में से हवा इतनी तेज़ी से अंदर दाख़िल हुई है कि मेरे पूरे बदन में सरसरी–सी दौड़ गई है। क्योंकि मेरा धड़ लिहाफ़ से बाहर है और साइडों से लिहाफ़ के अंदर हवा घुस रही है, जिसकी वजह से कभी–कभी हवा मुझे अपने ठंडे होने का अहसास करा जाती है।

कभी तो ये सब एक रूटीन–सा लगता है – रात के बाद दिन, दिन के बाद रात। ठीक एक नाली की तरह, जिसकी दो बॉन्डरी होती हैं, जो कभी मिल नहीं सकतीं, और बीच में बहता हुआ पानी जो कभी रुकता नहीं है। ठीक मेरी–तुम्हारी ज़िन्दगी की तरह।

ख़ैर, ऐसा तो मैं सोचती हूँ। लेकिन शायद ऐसा आप न सोचें। ज़रा मैंने गर्दन क्या घुमाई है, साइड की दीवार पर मुझे माँ की साड़ी टंगी नज़र आ रही है। आज धूप नहीं निकली है ना, इसलिए लक्ष्मी ने इसे अन्दर ही डाल दिया है। वैसे ये साड़ी मुझे कुछ ख़ास नहीं लगती। पर आज तो ये मुझे संतरी बादल की तरह नज़र आ रही है। जिस पर सुनहरी कढ़ाई का झूला डला हुआ है, जिसमें सिर्फ़ मैं झूल रही हूँ। मेरे बाल हवा में लहरा रहे हैं। बालों से उठती हुई शैम्पू की महक पूरे बादल पर फैली हुई है और मैं ताज़ी हवा को अपने फेंफड़ों में भरती चली जा रही हूँ। लेकिन ये माँ के खर्राटे कभी–कभी तेज़ होकर मेरी कल्पना तक को निगल जाते हैं, और मेरा मन करता है कि मैं कुतुब मिनार की चोटी पर जाकर सोऊँ, जहाँ मुझे कोई डिस्टर्ब न करे। लेकिन फिर डर जाती हूँ, अकेलेपन से। अब ये कहियेगा कि क्यों? क्योंकि... अगर इस सवाल का जवाब आप ख़ुद से ढूँढेंगे, तो ज़्यादा अच्छी तरह पाएँगे, अपनी सोच में, अपने शब्दों में।

मेरी कमर में अब बहुत दर्द हो रहा है, इसलिए अब ज़रा–सा लेट जाती हूँ। अरे ये

क्या! हमारे घर की सफ़ेदी तो ठीक उन होठों की तरह है जिस पर एक पर लिपिस्टक होती है और दूसरे पर नहीं। क्योंकि हमारे घर की दीवारों पर तो सफ़ेदी है, पर छत पर नहीं। छत पर लगे ये लकड़ी के फट्टे आज बहुत अलग लग रहे हैं। शायद आज मैं इन पर कुछ ज़्यादा ही ध्यान दे रही हूँ। ऐसा लग रहा है कि इंसान की तरह इन फट्टों में भी अलग–अलग रंग हैं। जैसे काला, गोरा, साँवला वग़ैरह–वग़ैरह। और इन फट्टों में उभरी हुई तस्वीरें, जो बारिशों में पानी आने की वजह से बन गई हैं। बहुत–सी शक्लें तो ऐसी लग रही हैं, जैसे किसी जानने वाले की हों। लेकिन बहुत–सी डरावनी शक्लें तो मुझे डरा रही हैं। टाइम भी तो ज़्यादा हो रहा है। रात के दो बज रहे हैं। हो सकता है ये शक्लें टाइम का फ़ायदा उठाकर मुझ पर हावी हो रही हैं। अब मैं छत की तरफ़ देखूँगी ही नहीं। लेकिन अब तो मुझ से नोटबुक में भी नहीं देखा जा रहा, और जिस्म भी सारा दु:ख रहा है। बोल सकता नहीं है बेचारा, इसलिए दु:ख कर मुझे अपनी थकावट का अहसास दिला रहा है। अब मुझे लेट ही जाना चाहिए। कभी मुझसे मेरा बिस्तर नाराज़ हो जाए, क्योंकि अब ये नाराज़ हो गया तो मेरे जिस्म को कहाँ आराम मिलेगा। अच्छा भई, अब मैं लेटती हूँ अपने नर्म–नर्म बिस्तर में। इसलिए, आप सबको शुभरात्रि।

टेलिफ़ोन

नसीम बानो

हमारे घर के बगल में एक कारख़ाना है। जब हमारा घर कच्चा था, तब कारख़ाने में फ़ोन लग गया था। दो–तीन दिन बाद, भाई जान ने हमारे यहाँ भी कनेक्शन लगवा लिया। हमारा फ़ोन काले रंग का था, और बहुत चमकता था। दो–तीन महीने बाद, साथ की अम्मा, जिनके पास बिल्ली है, उन्होंने भी कनेक्शन लगवा लिया। मुझे अपने फ़ोन की घण्टी उन दोनों की घण्टियों से ज़्यादा अच्छी लगती थी। हमारी घण्टी तेज़ थी, सुनने में अच्छी थी। बिल्ली वाली अम्मा की घण्टी अच्छी नहीं थी। जब भी मैं उसे सुनती, मेरा मन करता फ़ोन को मेज़ पर से उठा कर ज़मीन पर फेंक दूँ। और जब कारख़ाने में फ़ोन बजता, तो वो उठाने में इतनी देर लगाते, छः या सात घण्टियों के बाद उठाते! उन के पास फ़ोन था, तो वो शो–ऑफ़ करते। हमारे घर में जैसे ही फ़ोन बजता, सब उसकी तरफ़ दौड़ते। अम्मी और रानी बाजी तो सब से पहले। पर अगर

वो तख़्त पर चढ़ने में टाइम लेते, तो सायरा फ़ोन उठा लेती। और अगर मैं फ़ोन के पास बैठी होती, तो मैं फ़ोन उठाती।

जब फ़ोन लगा था, तब हमें नम्बर नहीं मालूम था। भाई ने कहा, "फ़ोन के पास एक डायरी और पेपर रख लो। जब एक्स्चेंज से फ़ोन आए, तो जल्दी से नम्बर उतार लेना"। चौथे दिन फ़ोन आया। मैं तख़्त पर बैठी अपना होम वर्क कर रही थी। मैंने दूसरी ही घण्टी पर फ़ोन उठा लिया। जब मैंने "हैलो" कहा तो किसी आदमी ने शरीफ़ के लिए पूछा, "क्या शरीफ़ का घर है?" मैंने कहा, "हाँ"। उसने कहा, "फ़ोन शरीफ़ के नाम से लगा है?" मैंने कहा, "नहीं, मेरे चाचा के नाम से है"। मैंने इतना ही कहा था कि उसने फ़ोन काट दिया। मैंने पहली बार फ़ोन उठाया था, मेरे हाथ–पैर ठंडे हो रहे थे। फ़ोन पे बात करना अजीब लगा था।

भाई ने वापस आकर पूछा, "कोई फ़ोन आया था?" मैंने कहा, "किसी ने किया था, पर उस ने फ़ोन नम्बर नहीं बताया"। भाई कुछ नहीं बोले और बाहर चले गए। अगले दिन भाई एक्स्चेंज गए और नम्बर पता कर के हमें बताया।

हमने सबसे पहले बाजी को अपना नम्बर दिया। उनकी शादी सीलमपुर में हुई है। और मैंने चन्द्रकांता दीदी को फ़ोन करके उन्हें भी नम्बर बताया। और उन पड़ोसियों को भी, जिन के पास फ़ोन थे। फिर फ़ोन आने लगे। पता नहीं बाक़ी मोहल्ले वालों को नम्बर कैसे पता चला। सब के लिए फ़ोन आने लगे। बाजी ने भी फ़ोन लगवा लिया। जब उन्हें अकेलापन लगता, तो फ़ोन कर देतीं। हम भी उन्हें फ़ोन करके भतीजे से बात करते।

एक दिन रानी बाजी ने 161 डायल करके फ़ोन नीचे रख दिया। जब फ़ोन बजा तो अम्मी ने उठा कर "हैलो" कहा। हम सब इस बात पर बहुत हँसे। मैंने अपनी सहेली नाज़मीन को बताया, तो उस ने भी अपने घर की बात बताई। वो सब टीवी देख रहे थे। भाई कुर्सी पर बैठे बीड़ी पी रहे थे। (जैसे हम अपने पापा को 'चाचा' कहते हैं, वो अपने पापा को 'भाई' कहती है।) टीवी में फ़ोन बजा। भाई ने फटाफट अपनी बीड़ी फेंकी, फ़ोन उठाया और "हैलो" कहा। इससे नाज़मीन को बड़ी हँसी आई!
जब रिश्तेदार, मेहमान और मोहल्ले के लोग हमारे यहाँ से फ़ोन करने लगे, तो फ़ोन

का बिल बहुत बढ़ने लगा। तो भाई जान ने एक टेलिफ़ोन का बॉक्स बनाया और फ़ोन उसमें रख कर उस पर ताला लगा दिया। उन्होंने कहा, "कोई फ़ोन करने आए तो कहना चाबी मेरे पास है, या मिल नहीं रही, या सलमान ने खो दी"। हम ने चाबी प्याले में छुपा दी। पर पता नहीं सब को कैसे पता चल गया। जो भी फ़ोन करने आता, वो प्याले में से चाबी निकाल लेता। मेरे छोटे मौसा मुरादाबाद से काम करने आते। जब उन्हें फ़ोन करना होता, और बॉक्स बंद होता, वो एक स्क्रू–ड्राइवर माँगते, बॉक्स खोलते और फ़ोन कर लेते।

जब चाचा को दिल का दौरा पड़ा, तब रात के एक या ढाई बज रहे थे। हम ने सीलमपुर, बाजी को फ़ोन किया, ताकि वो जल्दी आ जाएँ। जब फ़ोन लगा था तो भाई, जो बहुत कंजूस हैं, ने कहा था, "बाहर जा कर फ़ोन क्यों नहीं कर सकते?" फिर हम ने नम्बर उनके ससुराल में दे दिया। हर दूसरे दिन वहाँ से फ़ोन आ जाता। हम भाई को तो कुछ नहीं कह सकते थे, पर अम्मी से कहते, "तो अब फ़ोन ठीक है? नहीं?" अम्मी कुछ नहीं कहतीं, चुप हो जातीं।

भाई जान बिल के पैसे देते थे। घर का ख़र्च भी उठाते थे, और गाड़ी की क़िश्तें भी भर रहे थे। फिर परेशानी हुई, और भाई को महीनों गाड़ी चलाना बंद करना पड़ा। घर का ख़र्च चलाना मुश्किल हो रहा था। टेलिफ़ोन बिल जमा होते रहे। हम चुका नहीं पाए, और फ़ोन कट गया।

हमारे यहाँ फ़ोन कुछ ढाई साल रहा। उसके कटने के बाद हम ने सब को अपने पड़ोसियों के घर का नम्बर दे दिया। ये नाज़मीन का घर है। अगर हमारे रिश्तेदारों, या किसी का फ़ोन आता, तो वो हमें बता देते। और वो कहते, "हमारे यहाँ से फ़ोन कर लिया करो"। मगर हम पीसीओ से ही फ़ोन करते। आख़िर किसी और के घर से उन्हें बिना खिसियाए कितनी देर फ़ोन कर सकते हो?

जब बस्ती में आग लगी थी, हमारा घर भी उस में जल गया था। आग में फ़ोन भी जल गया। बाजी को फ़ोन करने के भी पैसे नहीं थे। एक जले हुए बक्से में अम्मी को बयालीस एक रुपये के नोट मिले। उन्होंने बाजी को फ़ोन करने के लिए दो रुपए दिए। हम ने ज़ैबून ख़ाला के घर फ़ोन किया। सुबह के छः बज रहे थे, सब सो रहे थे और

हमें घबराहट हुई कि एक की जगह दो फ़ोन लग जाएँगे। फिर दुल्हा भाई आए। हम ने उन्हें कहा कि आ कर चाचा को ले जाएँ, कहीं उन्हें घर की हालत देख कर एक और अटैक न हो जाए। फिर हम ने फ़ोन रख दिया। मुझे याद है हम बाजी के घर पर थे जब भाई का तलाख़ हुआ था। हमें दुल्हा भाई ने फ़ोन पर इत्तला दी थी।

आग के बाद हम ने फ़ोन नहीं लगवाया। जब आख़री बार चाचा को हार्ट अटैक हुआ, तो हम ने रिश्तेदारों को ख़ाला के घर से ख़बर दी। और फिर जब वो गुज़र गए, हम ने फ़ोन से ही सब को बताया। आग के बाद जब हमारा घर बना, तो किसी ने फ़ोन लगाने का ज़िक्र तक नहीं किया।

घड़ी

बब्ली राय

मंगलवार की रात, मैं सोच रही थी कि किस पर लिखूँ। मैं टीवी देख रही थी और सोच रही थी, वो कौन–सी चीज़ है जो बहुत समय से हिलाई नहीं गई, और न ही हिलाई जाएगी। बहुत–सी चीज़ें दिमाग़ में आईं। जैसे, टीवी, तस्वीरें, पंखा, दीवार, दरवाज़ा। पर मैंने उनके बारे में आगे नहीं सोचा क्योंकि मुझे उनमें मज़ा नहीं आया। मैंने सवालों को छोड़ा और टीवी देखने लगी। अजय देवगन और शिल्पा शेट्टी की 'पृथ्वी' फ़िल्म आ रही थी। पर मुझे फ़िल्म अच्छी नहीं लगी। सिर दूसरी तरफ़ कर के, मैं सोने की कोशिश करने लगी। पता नहीं मेरी आँख कब लग गई। मैं अगली सुबह उठी।

सबसे पहले मेरी नज़र घड़ी पर पड़ी। उस में सात बजे थे। मैं उठी और स्वाति के पास गई। स्वाति एक पाँच महीने की लड़की है। उसका रंग गहरा है, आँखें बड़ी हैं, नाक चपटी है, माथा चौड़ा है। वो बिलकुल लड़के की तरह लगती है। जब भी वो किसी को बातें करते देखती है तो ख़ुद हँसने लगती है। मैं उसकी मौसी हूँ। उसके साथ खेलने के बाद, और उसे हँसाने के बाद, साढ़े सात बजे मैं पब्लिक टॉयलेट में शौच करने गई। ये टॉयलेट मेरे घर के पास है। वहाँ जिस भी समय जाओ, लगभग हमेशा ही भीड़ होती है।

घर पहुँच कर मैंने दरवाज़ा खोला, तो सबसे पहले मेरी नज़र घड़ी पर पड़ी। मैंने जल्दी–से हाथ धोए और अन्दर आ गई। ये घड़ी दरवाज़े से दिखती है। ये बहुत बड़ी नहीं है। उस पर रोमन नम्बर में लिखा है। उसका रंग चॉकलेट ब्राउन है, पर बाहर काली जाली की डिज़ाइन है। इस घड़ी की कहानी दिलचस्प है।

पहले हमारे घर में हाथ की घड़ी थी, पर दीवार की नहीं। हम पापा से कहते रहते, "ला दो ना!" पर वो नहीं लाते थे। फिर, चार साल पहले, वो इसे लाए और हम सब को दिखाई। मैंने पापा से पूछा, "कहाँ से लाए? और कितने में?" पापा ने कहा वो उन्हें उनके कबाड़ में मिली। वो चल नहीं रही थी। मैंने ये पापा को बताया तो वो बोले, "पगली, इस में सैल नहीं है। कोई चलती हुई घड़ी को कबाड़ में देगा?"

पापा ने उसमें सैल डाले और वो चलने लगी। उस वक़्त मैंने पापा से कहा था, "अच्छा हुआ जो तुम्हें घड़ी मिल गई, क्योंकि तुम कभी ख़रीदते तो नहीं"। मगर जब मैं घड़ी के बारे में सोचने लगी, तो कई सवाल आए। उसे देख कर मुझे अपनी एक दूसरी घड़ी की याद आई, जो तभी समय बताती थी जब उसे कलाई पर बाँधा जाए। जैसे ही उसे उतारते, वो बन्द हो जाती। उसका ये बर्ताव देख कर पापा ने उसे दस रुपए में बेच दिया था।

मैंने पापा से पूछा, "आप इस घड़ी की पिछली ज़िन्दगी के बारे में सोच सकते हो?" पापा ने कहा, "ये कोई इंसान नहीं है, जो इसकी ज़िन्दगी हो। ये निर्जीव है"। मैंने कहा, "मुझे यक़ीन है इस की ज़िन्दगी है"।

क्या पता इसे एक अच्छी दुकान में किसी बढ़िया कारीगर ने बनाया हो। और फिर बनने के बाद जब इस ने समय दिखाना शुरु किया हो, तो इसे घमण्ड हो कि सब सही वक़्त के लिए मुझे देखते हैं। फिर शायद किसी ने डेढ़ या दो सौ में इसे ख़रीदा हो, पर जब इस ने चलना बन्द कर दिया, तो इसे कूड़े में फेंक दिया हो। पर सैल डाल कर हम ने इसे नई ज़िन्दगी दी है।

और ये घड़ी अब भी चल रही है।

स्ट्रीट लैम्प

बॉबी ख़ान

शनिवार की शाम छः बजे सीमा अपनी छत पर बैठी किताब पढ़ रही थी। सामने ही राजू अपनी छत पर से सीमा को देख रहा था। राजू सीमा से बात करना चाहता था। राजू की छत से खाँसा–खाँसी की आवाज़ सुनकर सीमा ने राजू की तरफ़ देखा। राजू ने किताब की तरफ़ इशारा करते हुए पूछा, "तुम क्या पढ़ रही हो?" सीमा ने किताब पलट कर दिखा दी। राजू किताब का नाम पढ़ते ही हँस पड़ा और नीचे चला गया। सीमा आराम से बैठी किताब पढ़ती रही। इतने में राजू भी सीमा की छत पर आ गया और आते ही सीमा की आँखों पर हाथ रख दिया। सीमा घबरा कर बोली, "आशा, हट जा"। राजू ने फ़ौरन हाथ हटा लिया और हँसने लगा। और कहा, "किताब पढ़ने में इतनी मस्त है कि तुझे पता भी नहीं चला कि आशा है या राजू"। सीमा ने कहा,"तू पागल है"।

"मैं पागल थोड़े हूँ", राजू ने कहा, "तुझे किताब पढ़ने के अलावा और कुछ आता है? जब देखो यह बोर 'महकता आँचल' पढ़ती रहती है"। इतने में सीमा की मम्मी ने आवाज़ दी। आवाज़ सुनते ही सीमा जल्दी–से नीचे उतरी। सीमा से उसकी मम्मी ने कहा, "सीमा, तू आटा गूँध ले"। सीमा ने कहा, "मैं कितने आराम से किताब पढ़ रही थी। तुम्हारे आवाज़ देने पर पढ़ने का सारा मज़ा किरकिरा हो गया"। सीमा की मम्मी ने कहा, "किताब को छोड़ और आटा गूँध ले"। सीमा ने कूँड़ा उठाया और आटा गूँधने बैठ गई। सीमा के घर में उसकी छोटी बहन टीवी देख रही थी। मम्मी बावर्चीख़ाने में खाना बना रही थी। सीमा घर में ही आटा गूँध रही थी। उस वक्त साढ़े छः हो रहे थे। आटा गूँधते समय लाइट चली गई। लाइट जाते ही सीमा की बहन बाहर चली गई और घर में सीमा अकेली आटा गूँधती रही। सीमा ने मम्मी को आवाज़ लगाई और कहा, "मम्मी, लाइट चली गई, आकर लैम्प जला दो"। सीमा की मम्मी आईं और उन्होंने लैम्प जला दी। लैम्प जलाते ही मम्मी ने कहा, "सीमा, तुझे कितनी देर हो गई। इतनी देर में कितना काम हो जाता है"। मम्मी के चुप होते ही सीमा बोली, "आटा गुँध गया"।

सीमा की छत पर रोशनी की ज़्यादा परेशानी नहीं होती क्योंकि बाहर के खंबे की रोशनी आती है। वो इसलिए, कि उसके घर की छत से लाइट का खंबा दिखाई देता है और रात के समय पर भी खंबे की रोशनी से बहुत कुछ दिखाई देता है। सीमा की छत और खंबे के बीच में पीपल का पेड़ पड़ता है। जब खंबे की रोशनी पीपल के पत्तों पर पड़ती है, उस वक्त रोशनी से पीपल के पेड़ के पत्तों का रंग देखने लायक होता है। उस वक्त ऐसा महसूस होता है जैसे सूरज की किरणें पत्तियों को चीरती हुई हमारी ओर आ रही हों। और रोशनी से हमें अंधेरे से दूर कर रही हों। सीमा छत पर गई और खंबे की रोशनी में किताब पढ़ने बैठ गई। किताब पढ़ते–पढ़ते सीमा की नज़र सामने वाली दीवार पर गई जहाँ खंबा अपनी रोशनी बिखेर रहा था। दूसरी छत पर एक लड़का बच्चे को लेकर खड़ा हुआ था। लड़के की, बच्चे की, और साथ में पत्तों की परछाईं दीवार पर पड़ रही थी। सीमा ने देखकर पहले अपना हाथ उठाया, ये सोच कर कि उसकी परछाईं दीवार पर पड़ेगी। फिर उसके मन में आया, ″क्यों न मैं किताब लेकर खड़ी हो जाऊँ?″ सीमा अपनी छत पर किताब लेकर खड़ी हो गई। सीमा की पूरी परछाईं दीवार पर पड़ रही थी। सीमा कभी बैठती, कभी खड़ी हो जाती, कभी बैठकर सिर्फ़ अपना हाथ उठाती। परछाईं देखकर सीमा ख़ुश हो रही थी।

इतने में सीमा के पापा आवाज़ देते हैं, ″सीमा, जल्दी से नीचे उतर और मेरे जूते दे″। सीमा पापा की आवाज़ सुनते ही नीचे आई और पापा के जूते ढूँढने लगी। पापा ने कहा, ″सीमा जूते मिल गए?″ सीमा ने कहा, ″अभी नहीं″। पापा ने कहा, ″तू कहाँ ढूँढ रही है? देख, अल्मारी के नीचे रखे होंगे। देख, ध्यान से देख″। सीमा इधर–उधर देखने के बजाय अल्मारी के नीचे देखने लगी और मन में बड़बड़ाने लगी, ″कम्बख़्त पता नहीं जूते कहाँ सो रहे हैं। अल्मारी के नीचे नहीं हैं″। इतने में मम्मी बाहर से आईं और कहने लगीं, ″सीमा बेटा, क्या ढूँढ रही हो? जूते अल्मारी के नीचे नहीं बल्कि अल्मारी के अंदर रखे हैं, पन्नी में″।

सीमा ने अल्मारी का दरवाज़ा खोलना चाहा पर खुल न सका। वो इसलिए कि अल्मारी में ताला लगा हुआ था। सीमा ने मम्मी से पूछा, ″मम्मी चाबी कहाँ है? अल्मारी का ताला खोलना है″। मम्मी ने कहा, ″देख प्याले में रखी है″। सीमा ने चाबी प्याले में से निकाली, अल्मारी का ताला खोला, और नीचे वाले ख़ाने में जूते ढूँढने लगी। देखा जूते पन्नी में रखे हैं। सीमा ने जल्दी–से जूते निकाले और कहा, ″पापा, लीजिए″। पापा ने जूते पहने

और बाहर चले गए। मम्मी लैम्प लेकर बाहर चली गईं और अंधेरे ने घर में अपना डेरा जमा लिया। सीमा ने कहा, "लो, अब मम्मी लैम्प लेकर बाहर चली गईं। काश लाइट आ जाए!"

सीमा के घर से बाहर निकलते ही लाइट ने अपना मुँह दिखाया। लाइट आते ही सीमा ख़ुश हो गई और टीवी खोलकर बैठ गई। टीवी खोला तो देखा गाने आ रहे थे। गाना था 'कभी ख़ुशी, कभी ग़म' फ़िल्म का – 'सूरज हुआ मध्यम... चाँद जलने लगा'। सीमा आराम से बैठी गाना सुन रही थी। वो गाने सुनने में मस्त हो गई। इतने में पड़ोसियों के बच्चे आकर सीमा के घर के सामने चिल्लाने लगे। बच्चों के चीखने–चिल्लाने से गाना समझ में नहीं आ रहा था। सीमा उठी और बोली, "बच्चों, नहीं जाओगे यहाँ से? जाओ, अपने–अपने घर में जाकर शोर मचाओ"। बच्चे शोर मचाते हुए आगे चलने लगे। बच्चे जैसे–जैसे आगे बढ़ रहे थे, बच्चों के शोर की आवाज़ उतनी ही हल्की पड़ रही थी। सीमा जब तक बच्चों को भगा कर आई, गाना ख़त्म हो चुका था। सीमा बच्चों पर बड़बड़ाने लगी और टीवी बंद कर दिया, फिर खाना खाने बैठ गई। सीमा ने खाना खाया और छत पर जाकर मम्मी के साथ लेट गई।

वो सोचने लगी, "अगर मुझे चाबी नहीं मिलती तो मैं अल्मारी का ताला कैसे खोलती?" सीमा ने कहा, "मम्मी, अच्छा हुआ तुम घर में आ गईं और चाबी का पता बता दिया। नहीं तो मुझे डाँट सुनने को मिलती। जूते तो अल्मारी में आराम से बैठे थे"। फिर वो बोली, "मम्मी, कितना अच्छा होता कि हमारी तरह जूते भी बोल पाते, और अल्मारी भी। क्योंकि जिस समय मैं जूते ढूँढ रही थी, अल्मारी मुझ से कहती 'जूते मेरे अंदर रखे हैं'। मैं अल्मारी खोलती, तो जूते बोल पड़ते। काश! ऐसा होता तो कितना अच्छा होता। फिर परेशानी नहीं होती"।

केबल

धिरेन्द्र प्रताप सिंह

मुझे याद है थोड़ा बहुत, जब हमारे पास ब्लैक एण्ड व्हाइट टीवी था। उस समय केबल शायद चला–चला ही था। उस समय इतनी शायद अक्ल भी न थी कि केबल कनैक्शन

ही लगवा लें। टीवी नीचे वाले कमरे में था, और मैं अकेला टीवी देख रहा था। उस समय ब्लैक एण्ड व्हाइट टीवी में रिमोट नहीं हुआ करता था, मगर अब शायद उनमें भी रिमोट है। अकेला था, सोचा टीवी के कान मरोड़ कर ही देख लूँ। मन में ख़्याल–सा आया कि कहीं जिस तरह रेडियो एफ़एम चैनल कैच करता है, उसी तरह कहीं टीवी भी केबल के चैनल कैच कर रहा हो। टीवी का कान मरोड़ते–मरोड़ते मैंने देखा कि एक चैनल आ रहा है, जिस में फ़िल्म आ रही थी। मैंने सोचा कि थोड़ी तार हिला–डुला कर देखता हूँ, कहीं थोड़ा और साफ़ हो जाए। मगर चैनल साफ़ नहीं आया। मैंने सोचा कि केबल देखने के लिए कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा। केबल वाले की छतरी भी पाँच क़दम की दूरी पर थी। और तारें भी सामने बिजली के खंबे से बंधी थीं। फ़ासला था, तो बीच की गली का और बिजली के खंबे से लटकी तारों का। मैंने सामने सड़क की तरफ़ देखा, तो सामने मार्किट वालों ने छतों पर स्पीकर और साइकल के रिम पर तार बाँध कर मैगनट बनाई हुई थी, वो भी अपने टीवी के एन्टीने से बाँधकर।

मैंने भी सोचा कि कुछ न कुछ तो करना ही है। गली में कबाड़ी की दुकान पर गया, वहाँ से साइकल का रिम लेकर आया और छत पर जाकर एन्टीने से तार हटा कर उस रिम पर बाँध दी। नीचे उतर कर देखा तो केबल साफ़ आ रहा था। मम्मी सब्ज़ी लेकर आईं तो देखा कि मैं टीवी पर नई फ़िल्म देख रहा हूँ। मुझ से कहा, "टीवी पर नई फ़िल्म आ रही है?" मैंने कहा, "मैंने अपने दिमाग़ से किया है"। मम्मी ने कहा, "क्या किया है?" मैंने कहा, "ऊपर जाकर देख लो"।

मैं नीचे फ़िल्म देख रहा था। मम्मी चुपचाप ऊपर गईं और एन्टीने से वो रिम हटाकर आ गईं। मैंने सोचा कि कहीं से कोई ख़राबी हो गई होगी। मम्मी नीचे उतरकर आईं और कहा, "ये रिम कहाँ से लाया है? वहीं दे आ"। मैंने कहा, "आप ने रिम हटा क्यों दिया?" मम्मी ने कहा, "आज जब तेरे पापा ड्यूटी कर के आ जाएँगे, तो केबल लगवा लेना"। पापा आए और उन्होंने कहा, "कल लगवा लेना"।

मन फिर भी केबल देखने के लिए बेचैन था। मैंने राजू को चुपचाप बुलाया और कुछ नई तरकीब के बारे में सोचा। मेरी नई तरकीब ये थी – अपने टीवी की तारें लीं और उन्हें छील कर सिंगल–सिंगल तारें निकालीं और उन्हें जोड़ा। मैंने राजू से कहा, "मैं तार छीलता रहता हूँ और तू लपेटता जा"। दो घण्टे बीत चुके थे। अन्दाज़ा लगाया

कि तार सामने तक पहुँच जाएगी। मैंने राजू से कहा, "तू सामने खड़ा हो जा और दो छोटे–छोटे पत्थर खिड़की से फेंक दे"। खिड़की पर ग्रिल नहीं थी और मैं दो मंज़िले पर था। थोड़ा नीचे थीं बिजली की तारें। जो तारें हम ने छीली थीं, वो एक कण जितनी पतली थीं। राजू ने सामने से पत्थर फेंके। मैंने पत्थर में तारें बाँधीं और जब सामने फेंकने लगा तो तार हाथ से उलझ गई और सीधा बिजली की तारों से जा टकराई। मुझे इतनी तेज़ करन्ट लगा था कि मैंने एक पल सोचा कि मैं स्वर्ग–लोक सिधार गया। मगर मैं फिर भी नहीं माना और तार फिर फेंकी। राजू ने एकदम कैच करके हाथ ऊपर कर लिए। मैं जल्दी से भाग कर गया और केबल की तार के जोड़ पर उन तारों को बाँध दिया और आकर देखा तो केबल बिलकुल साफ़ एण्ड स्मूद था।

पापा ने दूसरे दिन कहा, "आज केबल लगवा ले"। मैंने सोचा कि कौन डेढ़ सौ रुपए महीने देगा। मैंने पापा से कहा, "रहने दो, क्या ज़रूरत है?"

स्कूल में राम

लख्मी चन्द कोहली

ये कहानी एक ऐसे लड़के के बारे में है, जिसे बिजली का काम करने में बड़ा मज़ा आता था। हर ख़राब चीज़ को सही, और हर चीज़ को ख़राब कर देता था। वह दिखने में लम्बा और थोड़ा साँवला था।

राम। मैं आपको राम के बारे में बताता हूँ। राम का पूरा नाम राम विलास था। वो हमारी क्लास का फ़र्स्ट मॉनिटर था। वैसे तो वो मेरा एक अच्छा दोस्त था। मगर वो अपने काम के लिए बड़ा स्ट्रिक्ट था। वो एक बजे स्कूल पहुँच जाता था, और आकर सबसे हाथ मिलाना उसे बहुत अच्छा लगता था। वो हमेशा वर्दी में आता था। क्लास में वो कभी तो हँसी–मज़ाक करता था, मगर कभी वो चुपचाप बैठा रहता था।
एक दिन की बात है। दोपहर के दो या ढाई बज रहे थे। काफ़ी गर्मी हो रही थी। सभी परेशान हो रहे थे। और हमारे डेस्क के ऊपर जो पंखा था, वो भी बहुत धीरे चल रहा था। हमारी क्लास में दो ही पंखे थे। दूसरा पंखा ठीक हमारे पीछे था। वो भी धीमे ही

चल रहा था। इतने में राम आया और मुझ से कहने लगा –
रामः यार लख्मी, गर्मी बहुत हो रही है। क्या किया जाए? ऐसे तो मर जाएँगे एक दिन।
तो – **मैंने कहाः** सही कह रहा है यार। और ये पंखा भी तो बहुत तेज़ चल रहा है, कितनी ठंड लग रही है न।
राकेशः अबे यार राम, तू तो बिजली का काम जानता है। तू कुछ करके इस पंखे को तेज़ नहीं कर सकता?

उस समय मैं, राम, राकेश ही वहाँ बैठे थे। बाक़ी सब तो पीछे बैठे गाने गा रहे थे। तो न जाने राम को क्या हुआ, वो एकदम से उठा और राकेश से कहने लगा –
रामः अबे यार, क्या बात याद दिलाई! चल, तू मेरे साथ चल, मैं अभी इस पंखे को तेज़ करता हूँ।

तो – **मैंने कहाः** ओ भाई! तू ऐसा–वैसा मत कर दियो। कहीं हम इससे भी जाएँ तो?
रामः बस यार, मुझे इस बात से खुन्दक आती है। अब जब मैं इसे तेज़ कर रहा हूँ, तो इसे पता नहीं क्या हो रहा है।
राकेशः ओए लौंगे, तू तो चुप ही रह और बैठकर देख ये पंखा कैसे तेज़ होता है।
और वो दोनों हमारे टीचरों के स्टाफ़ रूम में गए और वहाँ से पंखे में से एक कंडेंसर निकाल कर ले आए और आकर मुझे दिखाने लगे और कहने लगे –
रामः देख बेटा, अब देख तेरा पंखा कैसे तेज़ चलता है!

और वो दोनों डेस्क लगाकर पंखे में वो कंडेंसर लगाने लगे। अब सभी लड़के हमारे साथ आ गए थे। सभी उनका साथ दे रहे थे। और खड़े–खड़े एक–दूसरे से कह रहे थे, "यार अब ये पंखा तेज़ हो गया, तो हम भी अपना पंखा तेज़ करेंगे"। और कुछ तो कह रहे थे, "ओए संभल, ओए मरा!" बस, हँस रहे थे। अब पंखे में कंडेंसर लग गया था और राम नीचे उतर गया था। वो कहने लगा –
रामः देख ओए, अब तेरा पंखा कैसे तेज़ चलता है।
मैंने कहाः अच्छा भाई, हम भी देखते हैं।
जब उसने पंखा चलाया तो पंखा काफ़ी तेज़ चलने लगा। सभी ख़ुश हो गए थे। और राम मेरी तरफ़ देख रहा था। तभी –
मैंने कहाः वाह मेरे शेर! मान गए उस्ताद! बस अब इसे ऐसे ही चलने दे। मगर एक

बात तो बता, तू ये कंडेंसर लाया कहाँ से है?
तो– **राम**ः बताऊँ? मगर तू किसी को बताएगा नहीं। मैं ये अपने टीचरों के स्टाफ़ रूम के एक पंखे में से निकाल कर लाया हूँ।
मैंने कहाः अब वो पंखा?
रामः अब वो पंखा कभी नहीं चलेगा।
तभी न जाने उसे फिर क्या हुआ। वो कहने लगा, "मैं इसे और तेज़ कर सकता हूँ"। तो सभी की ज़ुबां से एक ही बात निकली, "वो कैसे?"
तो – **राम**ः इसमें अगर हम एक और कंडेंसर लगा दें, तो उससे और तेज़ चलेगा।
तो – **मैंने कहा**ः अबे यार, इसे इतना ही रहने दे। यार, कहीं ये ख़राब न हो जाए।
रामः अबे यार, तू भी क्या बात कर रहा है।
मैंने कहाः मगर तू अब दूसरा कंडेंसर लाएगा कहाँ से?

तो – **राम**ः अबे यार, स्टाफ़ रूम में पंखे अभी मरे नहीं हैं। अभी वहाँ बहुत पंखे हैं। तो उसने राकेश को साथ लिया और फिर से स्टाफ़ रूम की तरफ़ को चल दिया, और पाँच मिनट के बाद वो कंडेंसर ले भी आया। और फिर वो उसी तरह से कंडेंसर लगाने लगा और कंडेंसर को लगाकर जब वो नीचे उतरा तो कहने लगा –
रामः अब देखना ये पंखा चौथे गिअर को भी पीछे छोड़ देगा।
और उसने पंखा चलाया। पंखा चला, और काफ़ी तेज़ चला। सभी लड़कों के चेहरे पर ख़ुशी–सी दौड़ गई। मगर थोड़ी देर के बाद पंखे में ज़ोरदार धमाका हुआ, और पंखा हमेशा–हमेशा के लिए हमें छोड़ कर चला गया। अब सभी लड़के राम को देखने लगे और ज़ोर–ज़ोर से हँसने लगे। और राम को गालियाँ भी देने लगे। और राम –
रामः अबे यार, सीन हो गया। चलो कोई बात नहीं, शाम को देखेंगे।
मैने कहाः हाँ यार, पहले कंडेंसर बदला था, अब पंखा ही बदल देंगे।
सभी लड़केः मगर कहाँ से?
मैंने कहाः लाइब्रेरी में एक पंखा है जो हमारी गर्मी को दूर कर सकता है।
रामः कौन सा?... हाँ समझ गया!
मैंने कहाः समझ गया? तो छुट्टी के बाद पंद्रह मिनट में ये काम करना है हमें। ठीक है?

थोड़ी देर के बाद हमारी छुट्टी हो गई और हम ने अपना पंखा उतारा, लाइब्रेरी में गए, और ठीक सर की कुर्सी के ऊपर वाला पंखा उतारा और अपनी क्लास में लगा लिया।

पंखा लगाकर हम घर चले आए। दूसरे दिन हम ने पंखा चलाया तो पंखा धीरे चल रहा था। तो राम –

रामः अबे यार, धीरे चल रहा है। इसे तेज़ करें?

तो – **मैंने कहाः** ओ भाई, रहने दे। ये ऐसे ही ठीक है। ज़रा वहाँ की तो सोच, कि सर की क्या हालत होगी जब पँखा नहीं चलेगा।

और हम ताली मार–मार कर ज़ोर–ज़ोर से हँसने लगे, और ये भी पता नहीं किया हमने कि वहाँ लाइब्रेरी में सर की क्या हालत होगी।